प्राकृत जैन साहित्य में उपलब्ध 'धर्म' शब्द के विशेष अर्थों की मीमांसा

डॉ. अनीता बोथरा

प्रस्तावना :

'धर्म' शब्द के बारे में पूरी दुनिया के विचारवंतों ने जितना विचार किया है उतना शायद किसी अन्य शब्द के बारे में नहीं किया होगा। वैदिक परम्परा के विविध धर्मशास्त्रों ने प्रारम्भ में ही इस शब्द की व्युत्पत्तियाँ, अर्थ तथा लक्षण देने का प्रयास किया है। प्राकृत जनसाधारण की भाषा होने के कारण 'धम्म' शब्द के बारे में प्राकृत जैन साहित्य में उसका जिक्र किन-किन विशेष अर्थों से किया है यह इस शोधलेख का उद्देश्य है।

(अ) 'धृ' धातु से निष्पन्न विभिन्न अर्थछटा :

विविध शब्दकोषों के अनुसार धर्मशब्द 'धृ' क्रिया से निष्पन्न हुआ है। षष्ठ गण के आत्मनेपद में to live, to be, to exist इस अर्थ में कर्मणिरूप में इसके प्रयोग पाये जाते हैं। 'धृ-ध्रियते' का मतलब है, 'अस्तित्व में होना या धारण किया जाना।' दशम गण के उभयपद में धरति तथा धारयति रूप बनते हैं। इसका अर्थ है, 'धारण करना' (to hold, to bear, to carry)। संस्कृत, प्राकृत तथा पालि तीनों भाषाओं के साहित्य में धर्म शब्द के जो विविध अर्थ पाये जाते हैं उनके मूल में एक मुख्य अर्थ है, लेकिन विविध प्रयोगों के अनुसार अर्थ की छटाएँ बदलती हुई दिखाई देती हैं।

(ब) 'धर्म' शब्द के रूढ (प्रचलित) अर्थ :

विविध कोश ग्रन्थों में 'धर्म' शब्द के रूढ, प्रचलित अर्थ प्राकृत तथा संस्कृत साहित्य के सन्दर्भ देकर, संक्षिप्त तरीके से दिये हैं। जैसे कि-धर्म (religion), शील (behaviour), आचार (conduct), पुण्य (merit), नैतिक गुण (virtue), पवित्रता (piety), अहिंसा (non-violence), सत्य (truth), कर्तव्य (law, duty), रीति (observance), दान (donation), दया (kindness), धनुष्य (bow) आदि विविध अर्थों में संस्कृत तथा प्राकृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहित्य में धर्मशब्द के प्रयोग पाये जाते हैं। विविध व्यक्तिवाचक नाम भी वैदिक तथा जैन परम्परा में उपयोजित किये हैं।

(क) प्राकृत जैन साहित्य में उपलब्ध 'धर्म' शब्द के विशेषप्रयोग :

विविध दर्शनों के विचार प्रस्तुतीकरण की अलग-अलग परिभाषा होती है। जैन-दर्शन में कई बार अन्य दर्शनों द्वारा प्रयुक्त शब्द, अलग अर्थ में भी पाये जाते हैं। जैन-दर्शन के मूलभूत प्राचीन ग्रन्थ अर्धमागधी तथा शौरसेनी प्राकृत में लिखे हैं। उनमें प्रयुक्त 'धर्म' शब्द के प्रयोग से हमें विशेष अर्थ प्रतीत होते हैं।

(१) धर्म : वस्तु का स्वभाव

जैन दर्शन वास्तववादी दर्शन है। जो अस्तित्व में है उसे वस्तु कहते हैं। सब वस्तुएँ छह द्रव्यों में विभाजित की है। विश्व में इसके अतिरिक्त कोई भी वस्तु नहीं है। इनको जैन परिभाषा में द्रव्य कहते हैं। ये षट्द्रव्य Empirical Realities हैं। इनके जो मूल स्वभाव है उन्हें 'धर्म' कहा है। उत्तराध्ययनसूत्र के अनुसार-

गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो।
भायणं सव्वदव्वाणं, नभं ओगाहलक्खणं ॥[१]

वत्तणालक्खणो कालो, जीवो उवओगलक्खणो।
नाणेण दंसणेणं च सुहेण य दुहेण य ॥[२]

यद्यपि अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्त्व आदि सामान्य गुण सब द्रव्यों में विद्यमान है तथापि प्रत्येक द्रव्य का एक मूलभूत लक्षण है। उसको ही जैन परिभाषा में 'धर्म' कहा है।

'धर्म' की इस व्याख्या से हम विश्व के समूचे सजीव, निर्जीव वस्तुओं के अस्तित्व की व्यवस्था लगा सकते हैं। जैसे कि जीव का स्वभाव उपयोग (Consciousness) है। यही उसका धर्म है। पानी का स्वभाव शीतलता है यही उसका धर्म है। अग्नि स्वभाव उष्णता है यही उसका धर्म है।

---

१. उत्तराध्ययनसूत्र २८.९

२. उत्तराध्ययनसूत्र २८.१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'धर्म' शब्द के जो विविध अर्थ कोशकारों ने अंकित किये हैं उनमें स्वभाव यह अर्थ जरूर पाया जाता है लेकिन सामान्यीकरण की प्रक्रिया से धर्म का जो व्यापक अर्थ जैन दर्शन में दिया जाता है यह जैन दर्शन की उपलब्धि है। विविध प्राकृत जैन प्राचीन ग्रन्थों में 'धर्म' की यही व्याख्या दी है।[३]

(२) धर्म : ध्यान का एक प्रकार -

प्राचीन अर्धमागधी और शौरसेनी ग्रन्थों में 'संवर' क साधनों में 'तप' का निर्देश किया गया है। तप के प्रकार बताते समय 'अन्तरङ्ग तप' में 'ध्यान' की चर्चा की गई है।[४] कार्तिकेयानुप्रेक्षा के अनुसार ध्यान की व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है।

अंतो-मुहुत्त-मेत्तं लीणं वत्थुम्मि माणसं णाणं।
झाण भण्णदि समए असुहं च सुहं च तं दुविहं॥[५]

उपर्युक्त आगमों में ध्यान के चार प्रकार बतायें है।[६] आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल। इसमें से शुभ या प्रशस्त-ध्यान का पहला प्रकार 'धर्म' है।[७] स्थानाङ्ग, कार्तिकेयानुप्रेक्षा आदि प्राकृत ग्रन्थों में धर्मध्यान शब्द में

---

३. धम्मो वत्थुसहावो। कार्तिकेयानुप्रेक्षा ४७८;
वत्थुसहावं पइ तं पि स-परपज्जायभेयओ भिन्नं।
तं जेण जीवभावो भिन्ना य तओ घडाईया॥ विशेषावश्यकभाष्य ४९५;
अप्पु पयासर अप्पु परु जिम अंबरि रवि-राउ।
जोइय एत्थु म भंति करि एहउ वत्थु-सहाउ॥ परमात्मप्रकाश १.१०१

४. पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ।
झाणं च विउस्सग्गो, एसो अब्भितरो तवो॥ उत्तराध्ययनसूत्र ३०.३०

५. कार्तिकेयानुप्रेक्षा ४७०

६. चत्तारि झाणा पण्णत्ता, तं जहा - अट्टे झाणे, रोद्दे झाणे, धम्मे झाणे, सुक्के झाणे। स्थानांग ४.६०; समवायांग ४.२; भगवतीसूत्र २५.६००; उत्तराध्ययनसूत्र ३०.३५; मूलाचार ३९४ (५); ६६६(७); कार्तिकेयानुप्रेक्षा ४७१.

७. अट्टं च रुद्दसहियं दोण्णि वि झाणाणि अप्पसत्थाणि।
धम्मं सुक्कं च दुवे पसत्थझाणाणि णेयाणि॥ मूलाचार ३९४ (५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपयोजित 'धर्म' शब्द का स्वरूप इस प्रकार बताया है – वीतराग पुरुष की आज्ञा, खुद के दोष, कर्मों के विविध विपाक तथा लोक के स्वरूप का चिन्तन करना ।[८] किसी भी पारम्परिक तथा साम्प्रदायिकता से दूर हटकर इन चार शब्दों का प्रयोग 'धर्म' के अर्थ में करना जैन दर्शन की उपलब्धि है ।

'धर्म' के अन्तर्गत जब लोकस्वरूप का चिन्तन आता है तब वैज्ञानिकों द्वारा एकाग्रचित्त से किये जाने वाले सब मूर्त-अमूर्त विषयक खोज इस शब्द में समाविष्ट हो जाते है । जैन-दर्शन में इस अर्थ में प्रयुक्त 'धर्म' शब्द जैनियों की वास्तववादी (realistic) विचारधारा का द्योतक है ।

(३) धर्म : बारह में से एक अनुप्रेक्षा-

दार्शनिक दृष्टि से 'अनुप्रेक्षा' भी 'संवर' का एक साधन है । अनुप्रेक्षा का मतलब है, 'वारंवार चिन्तन' । अर्धमागधी तथा शौरसेनी ग्रन्थों में वारंवार चिन्तन के लिए बारह प्रमुख मुद्दे दिये है ।[९] 'धर्म' की अनुप्रेक्षा के बारे में विविध आचार्यों ने जो वर्णन किया है उसके आधार से हम कह सकते हैं कि श्रावक का तथा साधु का समग्र आचार इसमें वर्णित है ।[१०] वर्णाश्रमप्रधान वैदिक ग्रन्थों में जिस प्रकार सभी वर्णों और आश्रमों के कर्तव्य किये जाते हैं उसी प्रकार उपर्युक्त ग्रन्थों में श्रावक तथा साधु के आचारविषयक कर्तव्य ही 'धर्म' शब्द से उल्लेखित है । वर्णप्रधान, जातिप्रधान या लिङ्गप्रधान आचार न देकर सिर्फ श्रावक या साधु के आचारविषयक कर्तव्यों का 'धर्म'शब्द में समावेश करना जैनियों की वैचारिक, सामाजिक उदारता का द्योतक है ।

---

८. धम्मे झाणे चउव्विहे चउप्पडोयारे पण्णत्ते, तं जहा- आणाविजए, अवायविजए, विवागविजए, संठाणविजए । स्थानांग ४.६५

९. अद्धुवमसरणमेगत्तमण्णा संसारलोगमसुचित्ता ।
आसवसंवरणिज्जर धम्मं बोधिं च चिंतिज्जा ॥
मूलाचार ४०३ (५); ६९४ (८); द्वादशानुप्रेक्षा गा. २; कार्तिकेयानुप्रेक्षा गा. २, ३

१०. कार्तिकेयानुप्रेक्षा गा. ३१८ ते ४८८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म : दस लक्षणों द्वारा आविष्कृत-

दस प्रकार के 'धर्मों' में क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य तथा ब्रह्मचर्य इन गुणों का वर्णन अनेक प्राकृत ग्रन्थों में किया है।[११] इनके स्पष्टीकरणों से यह स्पष्ट होता है कि जैन दर्शन के अनुसार क्षमा, मार्दव आदि गुण बाहर से धारण नहीं किये जाते। शुद्ध आचारपद्धति के कारण ये सभी गुण अपने आप अन्तःकरण में प्रकट होते हैं।

जैन धर्म का मूल सिद्धान्त है कि शुद्ध आत्मा संसारदशा में आवरणों से आवृत्त रहता है। चारित्र पालन के कारण जैसे-जैसे आवरण दूर हो जाते हैं वैसे-वैसे क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि लक्षणों के द्वारा आत्मा के मूल स्वभाव के प्रकटीकरण की प्रक्रिया शुरु होती है। **प्रकटीकरण का यह सिद्धांत 'धर्म' शब्द से जोडना यह जैन दर्शन की उपलब्धि है। बाह्य धारणा से यह सर्वथा भिन्न है। यह दशलक्षण धर्म प्रतिनिधिक तथा सार्वकालिक भी है।**

(५) धर्म : षट्द्रव्यों में से एक -

भारतीय दर्शनकारों ने आसपास दिखाई देने वाले विश्व की व्यवस्था द्रव्य या पदार्थों के द्वारा लगाने का प्रयास किया है। विशेषतः वैशेषिकदर्शन पदार्थों का या द्रव्यों का विचार सूक्ष्मता से करते हैं। जैन शास्त्र में द्रव्यों की संख्या छह बतलाई गयी है (Six substances; Six categories) वे द्रव्य है - जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल। काल छोडकर धर्म और अधर्म इ. पाँच अस्तिकाय द्रव्य हैं। जीव द्रव्य छोडकर बाकी पाँच द्रव्य अजीव है।[१२]

---

११. दसविहे समणधम्मे पण्णत्ते, तं जहा-खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे, लाघवे, सच्चे, संजमे, तवे, चियाए, बंभचेरवासे।
स्थानांग १०.१६; समवायांग-१०.१; द्वादशानुप्रेक्षा गा. ७०; कार्तिकेयानुप्रेक्षा ४७८

१२. अरूवि अजीवदव्वा णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ? गोयमा ! दसविहा पण्णत्ता, तं जहा-
धम्मत्थिकाए, धम्मत्थिकायस्स देसे, धम्मत्थिकायस्स पदेसा, अधम्मत्थिकाए... भगवती २५.११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन दर्शन के अनुसार धर्म और अधर्म द्रव्य-

इन दोनों शब्दों का व्यवहार में प्रयुक्त 'धर्म' और 'अधर्म' शब्द से सम्बन्ध नहीं है । ये सम्पूर्णतः पारिभाषिक शब्द है । 'द्रव्यसंग्रह' इस जैन शौरसेनी ग्रन्थ में नेमिचन्द्र कहते हैं -

गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी ।
तोयं जह मच्छाणं अच्छंताणेव सो णेई ॥[१३]

जिस प्रकार मछली के गमन के लिए पानी सहायक होता है उसी प्रकार जीव और पुद्गल जब गतिशील होते हैं तो 'धर्मद्रव्य' सहायक होता है ।

ठाणजुदाण अधम्मो पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी ।
छाया जह पहियाणं गच्छंताणेव सो धरई ॥[१४]

जिस प्रकार एक पथिक के लिए वृक्ष की छाया ठहरने में सहायक होती है उसी प्रकार स्थितिशील पुद्गल और जीवों के स्थिति के लिए 'अधर्मद्रव्य' सहकारी होता है ।

धर्म और अधर्म ये संकल्पनाएँ जैन दर्शन की आकाश संकल्पना से जुडी हुई है । धर्म और अधर्म ये दो तत्त्व समग्र आकाश में नहीं रहते वे आकाश के एक परिमित भाग में स्थित है उसे 'लोककाश' कहते हैं ।[१५] इस भाग के बाहर चारों ओर आकाश फैला हुआ है उसे 'अलोकाकाश' कहते हैं । जहाँ धर्म-अधर्म द्रव्यों का संबंध न हो वह 'अलोक' और जहाँ तक

पंच अत्थिकाया पण्णत्ता, तं जहा-धम्मत्थिकाए... पोग्गलत्थिकाए । समवायांग ५.८
ते पुणु धम्माधम्मागासा य अरूविणो य तह कालो ।
खंधा देस पदेसा अणुत्ति विय पोग्गला रूवी ॥ मूलाचार २३२ (५);७१५(८)
धम्माधम्मागासाणि पोग्गला कालदव्व जीवे य ।
आणाए सद्दहंतो समत्ताराहओ भणिदो ॥ भगवती आराधना ३५

१३. द्रव्यसंग्रह - १७

१४. द्रव्यसंग्रह- १८

१५. धम्मो अधम्मो आगास, कालो पुग्गल जंतवो ।
एस लोगो त्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरदंसिहि ॥ उत्तराध्ययनसूत्र २८.७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संबंध हो वह 'लोक' ।[१६]

धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनों द्रव्य अमूर्त हैं। इन्द्रियगम्य नहीं हैं ।[१७] आगम प्रमाण द्वारा प्राप्त हैं ।

उपादान और निमित्त कारण-

जगत में गतिशील और गतिपूर्वक स्थितिशील जीव और पुद्गल ये दो पदार्थ हैं । गति और स्थिति ये इन दोनों द्रव्यों के परिणाम और कार्य हैं । अर्थात् गति और स्थिति के उपादान कारण जीव और पुद्गल हैं फिर भी कार्य की उत्पत्ति में निमित्त कारण तो उपादान कारण से भिन्न ही हैं। इसीलिए जीव और पुद्गल की गति में निमित्त रूप धर्मद्रव्य और स्थिति में निमित्त रूप अधर्मद्रव्य है । इसी अभिप्राय से शास्त्र में **धर्मास्तिकाय का लक्षण 'गतिशील पदार्थों की गति में निमित्त होना' और अधर्मास्तिकाय का लक्षण 'स्थिति में निमित्त होना' कहा गया है ।**[१८]

धर्म-अधर्म असंकल्पना के बिना विश्व की स्थिति-

जड और चेतन द्रव्य की गतिशीलता तो अनुभव-सिद्ध है, जो दृश्यादृश्य विश्व के विशिष्ट अंग हैं। कोई नियामक तत्त्व न रहे तो वे अपनी सहज गतिशीलता से अनन्त आकाश में कहीं भी चले जा सकते हैं । इस दृश्यादृश्य विश्व का नियत संस्थान कभी सामान्य रूप से एक-सा दिखाई नहीं देगा, क्योंकि अनन्त पुद्गल और अनन्त जीव अनन्त परिणाम विस्तृत आकाश क्षेत्र में बे-रोकटोक संचार के कारण वह पृथक्-पृथक् हो जायेंगे। उनका पुनः मिलना और वापिस दिखाई देना दुष्कर हो जायेगा । यही कारण है कि उस गतिशील द्रव्यों की गतिमर्यादा और स्थितिशील द्रव्यों की स्थितिमर्यादा के नियामक तत्त्व को जैन दर्शन ने स्वीकार किया है ।

---

१६. धम्माधम्मा कालो पुग्गलजीवा य संति जावदिये ।
आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥ द्रव्यसंग्रह २०

१७. अज्जीवो पुण णेओ पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं ।
कालो पुग्गल मुत्तो रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु ॥ द्रव्यसंग्रह १५

१८. गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो । उत्तराध्ययनसूत्र २८.८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म और अधर्म के कार्य "आकाश' नहो कर सकता-

धर्म और अधर्म का कार्य 'आकाश' से सिद्ध नहीं हो सकता। आकाश को गति और स्थिति का नियामक मानने पर वह अनन्त और अखण्ड होने से जड तथा चेतन द्रव्यों को अपने में सर्वत्र गति और स्थिति करने से रोक नहीं सकेगा। इस तरह नियत दृश्यादृश्य विश्व के संस्थान की अनुपपत्ति बनी ही रहेगी। इसलिए धर्म-अधर्म द्रव्यों को आकाश से भिन्न एवं स्वतन्त्र मानना न्यायसंगत है।[१९]

जीव के स्वतन्त्र सत्तारूप अस्तित्व के लिए धर्म-अधर्म की आवश्यकता-

जैन मान्यता के अनुसार प्रत्येक जीव का स्वतंत्र अस्तित्व है। संसारी जीव तो अपने कर्मों के अनुसार लोकाकाश में अनन्त बार जन्मता और मरता रहता हैं। सिद्ध जीव स्वाभाविक ऊर्ध्वगति से लोकाकाश के अन्त तक जाते हैं। उनका सत्तारूप अस्तित्व वहाँ कायम रखने के लिए सिद्धशिला की परिसंकल्पना की है। ऐसे जीवों का अलोकाकाश में बे-रोकटोक संचार रोकने के लिए धर्म और अधर्म के क्षेत्र के ऊर्ध्व अन्त में इन जीवों का अस्तित्व माना है।[२०]

धर्म शब्द का रूढ अर्थ एवं द्रव्यवाचक धर्म शब्द-

आपाततः ऐसा लगता है कि सदाचार एवं धार्मिक आचरण आत्मा की स्वाभाविक ऊर्ध्वगमनशीलता को (आध्यात्मिक प्रगति को) सहायक होता

---

१९. तत्त्वार्थसूत्र (सुखलाल संघवी) पृ. १२४. १२५

२०. बहीया उड्ढमादाय नावकंखे कयाइ वि।
पुव्वकम्मखयट्ठाए इमं देहं समुद्धरे ॥ उत्तराध्ययनसूत्र ६.१३
(ऊर्ध्वं सर्वोपरिस्थितमर्थान्मोक्षम् उत्त. टीका. शान्त्याचार्य पृ. २६९ अ. २)
णट्ठट्ठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो ॥ द्रव्यसंग्रह गा. ५१ ॥
आगासं अवगासं गमणट्ठिदिकारणेहिं देदि जदि।
उड्ढंगदिप्पधाणा सिद्धा चिट्ठंति किध तत्थ ॥पंचास्तिकाय गा. ९९॥
जम्हा उवरिट्ठाणं सिद्धाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
तम्हा गमणट्ठाणं आयासे जाणा णत्थित्ति ॥पंचास्तिकाय गा. १००॥
जेसिं उड्ढा उ गइ ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं। सिरिसिरिवालकहा १२३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है । तथा दुराचार एवं अधार्मिक आचरण आत्मा को संसार में रोकता है। रूढ अर्थ में धर्म और अधर्म इसके कारणभूत हैं । लेकिन जैन दर्शन में इतने मर्यादित अर्थ में इन शब्दों का प्रयोग नहीं किया है । प्राचीन से प्राचीन प्राकृत आगमों में 'जीव और पुद्गल के गति और स्थिति को सहाय करनेवाले' इसी अर्थ में धर्म-अधर्म द्रव्यवाचक शब्दों की अवधारणा हुई है । कदाचित् शब्द साम्य होगा लेकिन धर्म और अधर्म ये द्रव्य निश्चित ही किसी वैज्ञानिक संकल्पना के वाचक है ।

धर्म-अधर्म में निहित वैज्ञानिक संकल्पना-

जैन दर्शन की वैज्ञानिक दृष्टि से चिकित्सा करनेवाले आधुनिक विचारवंतों ने धर्म-अधर्म संकल्पना का भी विचार वैज्ञानिक दृष्टि से सामने रखा है । कई विचारवंत सूचित करते हैं कि यह एक प्रकार की ऊर्जा (energy) है । लेकिन हमें लगता है कि यह ऊर्जा नहीं है । जब प्राचीन समय के जैन दार्शनिकों ने पर्वत, प्रासाद जैसी स्थिर वस्तुएँ, खुद होकर हलचल करनेवाले प्राणी तथा आकाश में नियमित रूप से गतिशील होनेवाले ग्रह, तारे आदि देखे होंगे तभी उनके मनके इनके गतिशील और स्थितिशीलता बारे में धर्म और अधर्म नाम की अवधारणा प्रस्फुरित हुई होगी । वह अवधारणा आकाश और काल से निश्चित रूप से अलग है । वैज्ञानिक परिभाषा में जिसे गुरुत्वाकर्षण शक्ति (gravitational force) कहते हैं, उसी शक्ति का अस्तित्व उन्होंने 'धर्म-अधर्म' इस परिभाषा में व्यक्त किया होगा।

आज भौतिकी विज्ञान के इतिहास में यह लिखा हुआ है, कि सृष्टि के नियमों की खोज करते हुए 'सर आयझेक न्यूटन' को इस विशिष्ट शक्ति का एहसास हुआ । आगे जाकर अनेक वैज्ञानिकों ने इस संकल्पना का विकास किया । इस नियम पर आधारित अनेक उपकरण बनायें । लेकिन जैन दर्शन ने जब प्राचीन काल में धर्म-अधर्म नामक द्रव्यों की कल्पना की होगी उस समय भी उन्हें इसी गुरुत्वाकर्षण शक्ति के नियम का ही एहसास हुआ होगा । विशेष बात यह है कि जैन दर्शन के सिवाय अन्य किसी भी पाश्चात्य-पौर्वात्य दर्शनों ने द्रव्य के स्वरूप इसका उल्लेख नहीं किया है ।[२१]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दार्शनिक मान्यता के अनुसार धर्म-अधर्म आदि द्रव्यों का जितने क्षेत्र में अस्तित्व है उसे लोकाकाश कहते हैं। उसके परे अलोकाकाश है। धर्म-अधर्म को अगर गुरुत्वाकर्षण शक्ति माना जाय तो हम यह कह सकते हैं कि गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र लोकाकाश है और उसके बाहर का क्षेत्र अलोकाकाश है।

उपसंहार

'धर्म' शब्द के बारे में पूरी दुनिया के विचारवंतों ने जितना विचार किया है उतना शायद किसी अन्य शब्द के बारे में नहीं किया होगा। जैन प्राकृत साहित्य में कौन-कौन से विशेष अर्थों से 'धर्म' शब्द का प्रयोग किया है यह इस शोध-लेख में अंकित किया हैं।

* 'वत्थुसहावो धम्मो' इस व्याख्या से जैन दर्शन ने विश्व के समूचे सजीव-निर्जीव वस्तुओं के अस्तित्व की व्यवस्था लगाई है। इसी वजह से जैन-दर्शन की गणना वास्तववादी दर्शनों में की जाती है।
* धर्मध्यान शब्द में उपयोजित 'धर्म' शब्द किसी भी साम्प्रदायिकता से दूर हटकर एक वैश्विक-धर्म की और अंगुलीनिर्देश करता है।
* 'लोकस्वरूप का चिन्तन करना' भी जैन दर्शन के अनुसार 'धर्मध्यान' है। वैज्ञानिकों द्वारा एकाग्रचित्त से किये जानेवाले खोज भी इसमें समाविष्ट हैं।
* किसी भी तरह के क्रियाकाण्ड को धर्म न कहकर प्रशस्त चिन्तन रूप धर्मानुप्रेक्षा में 'धर्म' शब्द का प्रयोग करना, जैन दर्शन की विशेष उपलब्धि है।
* क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि प्रशस्त गुणों को 'धर्म' कहा है। शुद्ध आचार से ये गुण आत्मा में अपने आप प्रकट होते हैं। सद्गुणों के इस सहज आविष्कार को जैन दर्शनने 'धर्म' कहा है।
* पाँच अस्तिकाय अथवा षड्द्रव्यों में धर्म, अधर्म तत्त्वों का समावेश

---

२१. Ethical doctrines in Jainism, कमलचंद सोगाणी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना जैन दर्शन की विशेषतम उपलब्धि है। जैन-दर्शन ने जब प्राचीन काल में धर्म-अधर्म नामक द्रव्यों की कल्पना की होगी, उस समय भी उन्हें इसी गुरुत्वाकर्षण शक्ति के नियम का एहसास हुआ होगा और उन्होंने आकाश और काल इन दोनों तत्त्वों के अतिरिक्त गतिस्थिति-नियामक-शक्ति की संकल्पना की होगी।

★★★

Research Assistant-Sanmati-Teerth,
Research Institute of Prakrit & Jainology,
Recognised by Pune University,
Firodiya Hostel, BMCC Road, Pune-4.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org